बाल कहानियां भाग-15

मास्टरजी

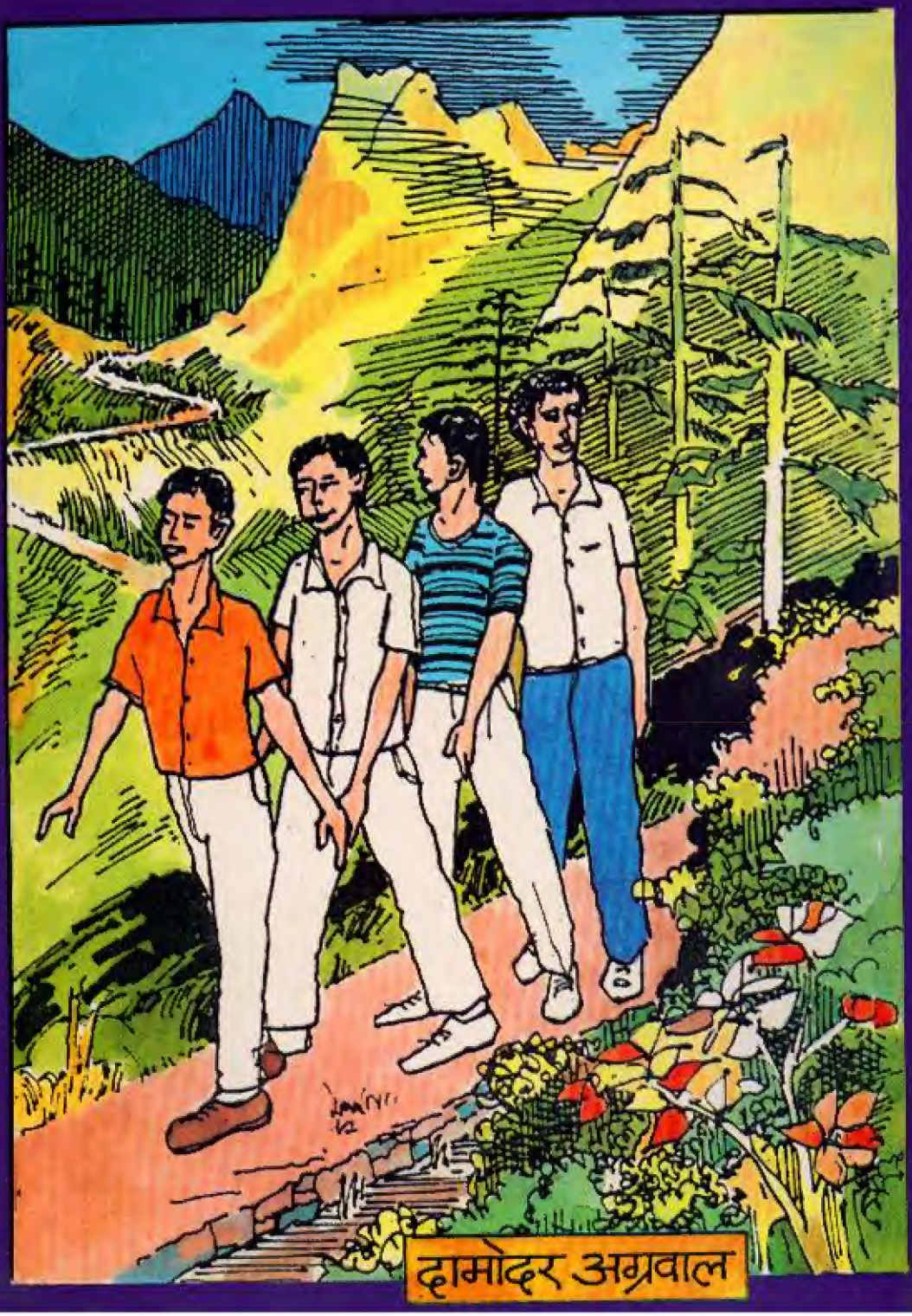

दामोदर अग्रवाल

पीपल वाले भूत

मनोहर जिस कस्बे में रहता था, उसके किनारे से एक नदी बहती थी—टौंस।

नदी के किनारे एक बगिया थी, जिसे लोग पुजारीजी की बगिया कहते थे। बगिया में एक पेड़ था, पीपल का। वह बहुत बड़ा और घना था। शाम को उसकी फुनगी पर गिद्ध आकर बैठ जाते थे। पुजारीजी उन्हें अक्सर तमंचे से उड़ा देते थे।

बहुत से लोगों का विचार था कि पीपल पर भूत रहते हैं और वे लोगों का भला भी करते हैं, बुरा भी। भूतों के न जाने कितने किस्से लोग सुनाते रहते थे। कोई कहता था कि भूतों ने उन्हें जलेबियां खिलाईं, कोई कहता था कि भूत हमारी साइकिल छीन कर ले गए, कोई कहता था कि भूत ने सुअर को मार दिया। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ।

एक दिन मनोहर की मां ने भी उसे भूतों का एक किस्सा सुनाया। वह किस्सा इस प्रकार था :

"बरसात के दिन थे। टौंस बढ़ी हुई थी। रात में पीपल से भूत उतरते थे और नदी में नहाते थे। नहाकर लौटते थे, तो पीपल के नीचे आग जलाकर चिड़ियों और जानवरों को पकाकर खाते थे। उन्हें ऐसा करते पुजारीजी ने देखा था। कुछ और लोगों ने भी देखा था।

"कहते हैं, एक दिन रात के डेढ़ बजे उधर से पुजारीजी की चाची गुजरीं। वह एक गांव से किसी बीमार को देखकर पगडंडी से भाई के साथ लौट रही थीं। तभी पीपल से जैसे कोई नीचे कूदा और चाची की ओर बढ़ने लगा। उसके पैरों के पंजे पीछे की ओर थे। दांत बड़े-बड़े थे। मुंह से चिनगारियां निकल रही थीं...।

"उसके बाद फिर चाची को कुछ न दिखाई दिया और वह बेहोश हो गईं...।

"उन्हें वहीं छोड़कर चाची का भाई भागा-भागा चाची के घर गया और लोगों को जगाकर बुला लाया। लोग अपने-अपने हाथों में लालटेन और डंडे लेकर वहां आए, तो देखा कि चाची बेहोश पड़ी हैं। सबने कहा कि चाची के शरीर में भूत घुस गया है। वे उन्हें खाट पर लिटाकर घर ले गए...।

"दूर के एक गांव से एक भूत उतारने वाले ओझा को बुलाकर लाया गया। ओझा ने चाची को जमीन पर लिटाकर उनकी नाक में लाल मिर्च भरी, फिर सिर पर खूब पानी डाला। उसने चाची के गाल पर चार-पांच चांटे भी लगाए। उसने सोचा कि जिस शरीर में भूत घुसा है, उसको सताने से भूत बाहर निकल कर भाग जाएगा...।

"थोड़ी देर में चाची को होश आ गया, और वह हिलने-डुलने लगीं। लोगों ने कहा कि भूत उतर गया।"

मनोहर ने जब यह कहानी स्वयं अपनी मां के मुंह से सुनी, तो उसको भूत के होने पर कुछ-कुछ विश्वास होने लगा। लेकिन उसके मन में यह भी था कि हो सकता है कि भूत वगैरह कुछ न रहा हो और पुजारीजी की चाची, यों ही डरकर बेहोश हो गई हों। और जब उनकी नाक में मिर्च ठूंसी गई और माथे पर पानी डाला गया, तो शरीर को वह कष्ट बर्दाश्त न हो पाया हो और वह होश में आ गई हों।

फिर मनोहर ने मन-ही-मन ठान लिया कि भूत है या नहीं, इसकी परीक्षा स्वयं करनी चाहिए। तैयारी के तौर पर उसने भूतों के न जाने कितने किस्से पढ़े। उनकी आदतों और सूरत के बारे में जानकारी इकट्ठी की और एक रात हाथ में चाकू और लालटेन लेकर चुपचाप घर से निकल गया।

मेड़ कूदकर वह सीधा पुजारीजी की बगिया में पहुंचा। बिल्कुल अंधेरा। झाड़-झंखाड़। घने, गहरे काले पेड़। हर पेड़ एक भयानक भूत जैसा। मनोहर के कदम डगमगाने लगे। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। घिग्घी बंध गई। वह किसी तरह वहां से निकल भागने की हिम्मत जुटाने लगा...लेकिन नहीं...उसने अपने आपको डांटा और भूतों के डेरे, उस पीपल के नीचे जाकर बैठ गया।

फिर उसे मां की याद आने लगी और वह चीख उठा। उसके चीखने से पेड़ पर सोए कुछ पक्षी अपने पर फड़फड़ा कर दूसरे पेड़ पर चले गए। उसने सोचा कि भूतों ने तबला बजाया है। अब वह नीचे उतरेंगे और उसे उठाकर ले जाएंगे। उसने लालटेन को अपने और पास सरका लिया, लेकिन भूत नीचे नहीं उतरे। मनोहर की हिम्मत बंध गई।

थोड़ी देर बाद ऊपर से कुछ पक्षी उड़े और चीं-चीं करते हुए कहीं दूर निकल गए। अंधेरे में वे बहुत बड़े लग रहे थे। मनोहर ने सोचा कि ये भूतों के बच्चे हैं, जो सैर करने जा रहे हैं। अब भूत नीचे उतरेंगे और उसे खा जाएंगे। लेकिन तभी उसे उल्लुओं और चमगादड़ों की याद आ गई, जो रात में ही उड़ते हैं और उसके मुंह से एक हंसी-सी निकल गई।

उसकी हिम्मत भी अब तक बहुत बढ़ गई थी। वह वहां से उठा और सीना तानकर इधर-उधर चलने और देखने लगा। तभी उसको पीपल की एक डाल से एक काला-सा जानवर नीचे उतरता हुआ दिखाई दिया। उसने किताबों में पढ़ रखा था कि भूतों के पास अपने आपको किसी भी जानवर के रूप में बदल देने की शक्ति होती है। इसलिए जरूर यह कोई भूत ही है, जो उसे अपने वश में करने आ रहा है। वह डर गया, लेकिन उसने साहस बनाए रखा।

वह जानवर धीरे-धीरे नीचे उतरा, मनोहर के पास से होता हुआ आगे निकल गया और थोड़ी दूर पर जाकर बैठ गया। यह भूत नहीं हो सकता—मनोहर ने सोचा। उसने लालटेन उठाकर उसे देखा, तो वह ऊदबिलाव था। उसने उसके ऊपर एक कंकड़ फेंका, तो वह भाग खड़ा हुआ। यह कैसा भूत है, जो एक कंकड़ से डर गया? यह सोचकर उसे एक बार फिर हंसी आ गई और वह ठहाके लगाने लगा।

इसके बाद मनोहर जोर-जोर से बोलने लगा, जैसे भाषण दे रहा हो—'भूत, तुम कहां हो, सामने आओ...भूत, तुम पीपल से नीचे उतरो...देखो, देखो, मैं मनोहर हूं...मैं बगिया का राजा हूं, मैं पीपल का राजा हूं, मैं जंगल का राजा हूं...मैं तुम्हारा दोस्त हूं...तुमसे दोस्ती करने आया हूं...। लेकिन उसके लाख चीखने-चिल्लाने के बाद भी ऊपर से न कोई बोला, न कोई नीचे उतरा।

फिर मनोहर को न जाने कब नींद आ गई और वह वहीं सो गया।

उधर मनोहर के घर में तहलका मचा हुआ था। सुबह जब घर के लोग उठे, तो उसकी खाट खाली थी। खाट के पास पड़ी रहने वाली लालटेन भी गायब थी। उसके मां-बाप और भाई सब घबरा गए। मुहल्ले में खबर फैल गई कि मनोहर गायब हो गया है। लोगों को पीपल के भूतों पर शक हुआ। जरूर वे ही उसे उठा ले गए होंगे। इसलिए लोग उसे ढूंढने पुजारीजी की बगिया पहुंचे और उन्होंने देखा कि वह भूत वाले पीपल के नीचे चुपचाप सो रहा है। सूरज की एक किरण उसके माथे पर चमक रही थी।

लोगों ने कहा कि इसे रात में भूत उठा लाए थे और सुबह होते ही पीपल के नीचे छोड़ गए। लेकिन मनोहर की मां को पूरा विश्वास था कि वह वहां रात में अपने आप आया होगा, क्योंकि उसने उससे कई बार कहा था कि वह भूतों को जब तक अपनी आखों से नहीं देख लेगा, तब तक यह नहीं मानेगा कि भूत होते हैं।

मां ने उसे जगाया, तो वह हंसता हुआ उठ खड़ा हुआ और बोला—"मां, मैं रात में यहां भूत देखने आया था, लेकिन भूत नहीं दिखा तो आकर यहीं सो गया।"

मनोहर की मां की आंखें छलछला आईं। उसको एक पल को लगा था कि उसका बेटा अब वापस नहीं आएगा। लेकिन जब उसने देखा कि वह भूतों के डेरे पर रात के अंधेरे में आकर भी जीवित है, तो उसे भी लगा कि भूत-पिशाच बस कल्पना की चीजें हैं। वह मनोहर से बोली—"बेटा, भूत तो बस कहानियों में ही होते हैं। उन कहानियों को पढ़ो, सुनो और भूल जाओ...उन्हें ढूंढने निकलना मूर्खता है।"

सबके साथ घर लौटते हुए मनोहर कुछ सोचकर बोला—"तो फिर ऐसी कहानियां तुम सुनाती ही क्यों हो, मां?"

मां ने कहा—"ठीक है बेटा, अब आगे से भूतों की कहानियां नहीं सुनाऊंगी।"

उसके बाद मनोहर के घर में न कभी भूतों की कहानियां सुनाई गईं, और न किसी बच्चे के मन में भूतों का डर बैठा।

मार्च का बुखार

"मार्च का महीना आते ही मुझे न जाने क्या हो जाता है। हाथ-पांव फूलने लगते हैं। पसीना छूटने लगता है। भूख नहीं लगती, फिर भी घबरा-घबरा कर सारा दिन खाता ही रहता हूं। किताबें डराने लगती हैं। स्कूल से भाग जाने को मन होने लगता है। मास्टरजी से कतराने लगता हूं। पिताजी का सामना करना मुश्किल हो जाता है। पढ़ने में तेज साथियों से जलन होने लगती है। जी चाहता है फिर कहीं दूर निकल जाऊं, या मुंह पर थप्पड़ मार लूं। चिड़चिड़ाहट बनी रहती है। ... गधा कहीं का। गधा कहीं का। गधा कहीं का ...।"

और मनोहर अपनी डायरी में न जाने और कितनी बार 'गधा कहीं का।' लिखता रहता, यदि उसका दोस्त मुरली अचानक न आ टपकता। मनोहर मन-ही-मन में बड़बड़ाया—कितनी बुरी आदत है, मुरली की। जब भी डायरी लिखने बैठता हूं, वह धड़धड़ाता हुआ आ जाता है और ध्यान टूट जाता है। होगा पढ़ने-लिखने में तेज। लेकिन कुछ दूसरों का भी तो ख्याल करना चाहिए उसे।

मनोहर अपनी कलम और डायरी एक ओर खिसका कर मुरली के पास दीवान पर बैठ गया और बोला—"कोर्स की किताबों के साथ झख मारते रहना मुझे

अच्छा नहीं लगता। वही इतिहास-भूगोल, वही अंग्रेजी, वही गणित, वही साइंस... जी चाहता है कि सिर फोड़ लूं।"

"सिर तो फोड़ ही रहा है,अपना। यह डायरी लिखना आखिर क्या है? मन का गुब्बार निकालना ही तो है। ला, देखूं क्या लिखा है?" और मुरली डायरी के पन्ने पढ़ने लगा। पढ़कर बोला—"यार, तू लिखता बहुत अच्छा है। मगर कुछ इम्तहान का भी तो सोच। अगले हफ्ते से शुरू हो रहे हैं। नम्बर कम आए, तो लोगों से क्या कहेगा, मां-बाप से क्या कहेगा?"

"यही तो रोना है"—मनोहर बोला—"इम्तहान क्या इसलिए पास किए जाते हैं कि लोगों को बताया जा सके, इसलिए नहीं कि श्रम का फल मिले, मन को संतोष हो, खुशी हो? इसीलिए तो मैं घबराता हूं उससे।"

इतना कहने के बाद मनोहर एक बार फिर सोच में डूब गया। उसे फिर लगने लगा कि उसके हाथ-पांव फूल रहे हैं। उसे मतली भी आने लगी। उठकर वाश-बेशिन तक गया और मुंह धोकर वापस आ गया। पर पसीना और घबराहट कम नहीं हुई। वह बोला—"एक बात बता मुरली। यह सब तुझे क्यों नहीं होता? तू हंसता रहता है, इम्तहान के दिनों में भी निश्चिंत रहता है और इम्तहानों का इंतजार ऐसे करता है, जैसे कोई दोस्त आने वाला हो।"

मुरली इतने जोर से हंसा कि मनोहर को धक्का लगा और उसने अपना गुस्सा बहुत मुश्किल से रोका। हंसने के बाद मुरली बोला—"जो रोग तुझे हो रहा है, वह तुझे इन्हीं दिनों में हर साल होता है। उसका कुछ नाम है, जो मुझे अभी याद नहीं आ रहा। लेकिन तू शुरू से ही क्यों नहीं पढ़ता? इम्तहान धक्के देने लगते हैं, तब घबरा-घबरा कर इधर-उधर भागता और सिर पीटता है या डायरी लिखने बैठ जाता है...।"

मुरली की यह बात मनोहर को अच्छी नहीं लगी। वह बोला—"क्या डायरी लिखना बुरी बात है? इससे मन कितना हल्का हो जाता है।"

"बुरी बात नहीं है"—मुरली ने कहा—"पर इसे किताबों से मुंह चुराने का बहाना नहीं बनाना चाहिए। लोग खेलते भी हैं, स्कूल के जलसों-समारोहों में भी भाग लेते हैं, पर किताबों से नाता नहीं तोड़ते। लेकिन तुम तो किताबों को मार्च में ही छूते हो, फिर भी उन्हें पढ़ने का साहस नहीं जुटा पाते। आखिर क्यों?"

यही तो सवाल है कि आखिर क्यों? मनोहर ने जैसे अपने आप से पूछा, और जब सिर उठाकर ऊपर देखा, तो मुरली दरवाजे के बाहर जा चुका था। उसे लगा जैसे वह नाराज हो गया है और यह सोचकर उसका दुख बढ़ गया। फिर वह उठा और एक तकिया उठाकर सोचने लगा—क्या इसे दीवार पर दे मारूं? क्या इसे चींथकर फेंक दूं? क्या गुलदान तोड़ दूं? क्या किताबों के पन्नों की धज्जियां उडाकर आजाद हो जाऊं?

तभी उसके मन में न जाने क्या कुछ घुमड़ने-सा लगा और उसकी हिम्मत टूटने-सी लगी। उसने जोर-जोर से चिल्लाना चाहा। 'पर चिल्लाने से क्या बनता है?'—उसके मन ने पूछा—अम्माजी आ आएंगी। लोग आ जाएंगे और समझाने लगेंगे कि मैं बीमार हूं। वे मुझे ग्लूकोज पिलाने लगेंगे। संतरे का जूस पिलाने लगेंगे। नीबू चटाएंगे। कितना खराब लगता है, यह सब। फिर कहेंगे—मेहनत कर बेटा, मेहनत कर। किताबें पढ़। इम्तहान में फर्स्ट आना है। इंजीनियर बनना है, डाक्टर बनना है। बड़ा आदमी बनना है। ...वगैरह, वगैरह।

मनोहर के मन का बोझ बढ़ता गया। लगा जैसे उसके दिमाग की नसें फट जाएंगी। दांत किटकिट करने लगे। जबान सूखने लगी। पेट में मरोड़ होने लगी और वह डायरी लेकर एक बार फिर बैठ गया।

लेकिन उसके हाथ कांप रहे थे। कलम की पकड़ ढीली हो रही थी। अक्षर भी टेढ़े-मेढ़े बन रहे थे, पर मन में विचारों का तूफान था कि रुकता ही न था। उसने लिखा—"इम्तहान...इम्तहान...इम्तहान। जैसे मैं इसीलिए पैदा हुआ हूं। डाक्टर बनो...इंजीनियर बनो...अरे, यह क्यों नहीं कहते लोग कि जहन्नुम में जाओ...वाह! क्या अच्छा आइडिया है, जहन्नुम में जाने का?"

जहन्नुम के ख्याल से उसका मन हल्का हो गया। आखिर कुछ लोग वहां भी तो जाते हैं, फेल होकर। आखिर जो पास नहीं होते, वे भी तो कुछ हो ही जाते हैं। ...और फेल होने के पक्ष में उसने न जाने कितने तर्क इकट्ठे कर लिए। तुलसीदास किस स्कूल में पढ़े? कालिदास किस स्कूल में गए? शेक्सपियर ने कौन-सा इम्तहान पास किया? क्या गौतम बुद्ध के कोई मास्टरजी थे? न्यूटन ने अपना सिद्धांत स्वयं ढूंढा। ...और यह सब सोचकर मनोहर का मन एक बार फिर हल्का हो गया, और उसने ठान लिया कि किताबें नहीं पढ़नी हैं, तो डंके की चोट नहीं पढ़नी हैं, और फेल होने में कोई शरम नहीं है।

फिर भी मनोहर को लग रहा था, जैसे उसके तर्कों में कहीं कोई भूल हो। यह सोचकर वह एक बार फिर बहुत परेशान हो उठा। रात को खाने पर बैठा, तो उससे कुछ खाया नहीं गया। उसकी मां भांप गई कि कुछ गड़बड़ है। कुछ तो वह समझती थी, क्योंकि मनोहर को यह हर साल होता था, इम्तहानों के आते ही। पर उसे लगा कि इस साल रोग कुछ बढ़ा ही है। अगले साल और बढ़ सकता है...फिर उसके अगले साल और। यह सोचकर वह मनोहर से बोली—"ले, यह दूध पी ले, बेटे! बादाम डाले हैं, इसमें। दिमाग तर रहेगा इनसे और पढ़ाई में मन लगेगा।...।"

मां की बात सुनकर वह एक बार फिर परेशान हो उठा। "पढ़ाई! पढ़ाई! पढ़ाई!"—वह जोर से चीखता हुआ बिना खाए उठ गया। मां बेचैन हो गई, पर कुछ बोली नहीं। पिता भी सहम कर रह गए। घर का माहौल बिगड़ गया।

तभी मनोहर की छोटी बहन मानिनी उसकी डायरी उठा लाई और एक पन्ना खोलकर मां-बाप को सुनाती हुई जोर-जोर से पढ़ने लगी।

उसमें लिखा था—"मां-बाप कहते हैं, पढ़ो! साथी कहते हैं, पढ़ो! मास्टरजी कहते हैं, पढ़ो! लेकिन दूरदर्शन वाले कहते हैं, रात को जागो और फिल्में देखो। क्या वे बेवकूफ हैं? उस रात अम्मा-पापा मेरठ गए हुए थे। मैंने 'बाबी' देखी... बड़ा मजा आया। रात को ढाई बजे सोया, तो गहरी नींद आई। कभी-कभी तो दूरदर्शन से तीन-तीन फिल्में दिखाते हैं। मुझे देखने क्यों नहीं दिया जाता? ...खुद देखते हैं...मुझसे कहते हैं, पढ़ो..."

मनोहर के पिता ने जब उसका लिखा यह सब सुना, तो गहरे सोच में पड़ गए। वह उसके कमरे की ओर बढ़े, पर वह उसे अंदर से बंदकर लाइट बुझा चुका था।

रात को कोई डेढ़ बजे उसके जोर-जोर से रोने की आवाजें आने लगीं। मां-बाप जाग गए। मनोहर ने बड़ी मुश्किल से दरवाजा खोला। वह हुचुक-हुचुक कर रोए चला जा रहा था। उल्टियां भी आ रही थीं। मां ने हाथ पकड़ा, तो वह बहुत गरम था। उसे सचमुच बुखार था। बड़ी मुश्किल से उसका रोना बंद हुआ, तो मां ने पूछा—"क्या हुआ?"

पहले तो उसने सोचा कि चुप ही रहूं। लेकिन फिर बोला—"बहुत ही खराब सपना आ रहा था। देखा कि स्कूल के हाल में बैठा हूं। इम्तहान का पर्चा सामने है, पर मेरी आंखों की ज्योति चली गई है और में कुछ भी नहीं देख पा रहा हूं। ...फिर देखा कि ज्योति आ गई है ... पर सवाल समझ में नहीं आ रहे हैं। फिर न जाने क्या-क्या देखा...लिखा नहीं जा रहा...फेल हो गया हूं...दूसरे लड़के पास हो गए है...हंस-बोल रहे हैं...मैं कोने में खड़ा रो रहा हूं...फिर भागता हूं... भागता हूं...भागता हूं ...और कुतुबमीनार से भी ऊंची किसी इमारत से..." और वह दहाड़ मारता हुआ एक बार फिर जोर-जोर से रोने लगता है, अपनी मां से लिपट कर। मां की भी आंखें भर आई।

किसी तरह रात कटी। मनोहर को अभी भी उबकाइयां आ रही थीं और बुखार भी था। उसे डाक्टर के पास ले जाया गया। डाक्टर ने सारी बातें सुनने के बाद उसे दवा दी, और बोला—"दो-तीन दिनों में सब ठीक हो जाएगा, उसके बाद इसे लेकर फिर आइए। तब और बातें करेंगे।"

दो-तीन दिनों में ही मनोहर ठीक हो गया और उसने अपनी डायरी में लिखा—"मैं जानता हूं कि यह कोई बीमारी नहीं थी, सिर्फ डर था, इम्तहान का डर, जो बीमारी बनकर मेरे तन-मन में घुस गया था। इसका इलाज डाक्टर की दवा नहीं है, वह तो सिर्फ दर्द दूर करती है। इसका इलाज है, डर को दूर भगाना ... मेहनत करके।" यह लिखने के बाद मनोहर उठा, जैसे उसने कोई संकल्प किया हो।

तीन दिन के बाद उसके मां-बाप उसे लेकर डाक्टर के पास फिर गए और पूछा—"डाक्टर साहब, इसे हुआ क्या था?"

डाक्टर ने जवाब दिया—"इसको एक आम बीमारी हो गई थी। इम्तहान के दिनों में यह स्कूली बच्चों को अक्सर हो जाती है। इसका नाम है—एक्जामिनेशन फीवर।"

"कैसे बचा जा सकता है, इससे डाक्टर साहब?" मनोहर ने पूछा।

"एक ही तरीका है"—डाक्टर ने कहा—"जुलाई में स्कूल खुलते ही पढ़ाई में नियमित हो जाओ। जो रोज पढ़ाया जाता है, उसे उसी रोज पूरा-पूरा समझ लो।"

"लेकिन इसकी कोई दवा भी तो होगी?" पिता ने पूछा।

"दवा तो तब होती है, जब यह रोग शरीर को पकड़ने लगे।" डाक्टर ने कहा।

"ठीक है। मैं समझ गया। धन्यवाद, डाक्टर साहब!" इतना कहकर मनोहर अपने मां-बाप के साथ उठकर डिस्पेंसरी से बाहर आ गया। घर पहुंच कर उसने सबसे पहले अपनी डायरी खोली और उसमें लिखा—"एक बुखार और होता है, जिसे मार्च महीने का बुखार कहते हैं। इसकी दवा मार्च में नहीं होती, जब बुखार चढ़ने लगता है। इसकी दवा जुलाई में ही शुरू करनी चाहिए, जब पढ़ाई शुरू होती है। उस दवा का नाम है—पुस्तक-प्रेम।"

डायरी बंद करके वह उठा और सीधे मुरली के घर गया। वह कमरे में बैठा पढ़ रहा था। वह भी वहीं बैठकर पढ़ने लगा। उसका डर गायब हो चुका था।

मास्टरजी

मनोहर कस्बे के एक बड़े रईस का बेटा था। कस्बे में ही उसके पिता की एक बड़ी कोठी थी। कोठी में उसके चाचा, ताऊ और परिवार के अन्य लोग भी रहते थे। छुट्टियों में वहां रहने और सबके साथ छुट्टियां बिताने के लिए कुछ रिश्तेदार और उनके बच्चे भी आ जाते थे। तब उसको बड़ी खुशी होती थी।

तब तेरह-चौदह साल का मनोहर अपने परिवार में ही नहीं, अपने स्कूल के साथियों और स्कूल के हेडमास्टर तथा दूसरे अध्यापकों के बीच भी बहुत चाहा-सराहा जाता था। इसका एक कारण तो यह था कि वह पढ़ने में बहुत तेज था और हिन्दी तथा अंग्रेजी, दोनों भाषाओं पर उसका समान अधिकार था। हिन्दी के पंडितजी उसके लिखे आलेख कक्षा में पढ़कर सबको सुनाया करते थे। अंग्रेजी के टीचर हीरारामजी भी उसकी प्रशंसा करते थकते न थे।

इसके अलावा मनोहर ने कविता लिखना भी शुरू कर दिया था। स्कूल की वार्षिक पत्रिका 'सनातन' में उसकी कविता एक बार पहले पृष्ठ पर छपी थी और उसका यश फैला था। स्कूल में हर शुक्रवार को वाद-विवाद, अंत्याक्षरी और कविता-पाठ भी हुआ करता था। वह उन सब में आत्म-विश्वास के साथ भाग लेता और स्वर से कविता पढ़ता, तो स्कूल का हाल तालियों से गूंज उठता था। इससे मनोहर को हार्दिक प्रसन्नता होती थी। उसे कुछ-कुछ गर्व का अनुभव भी होता था। स्कूल भी उसके पिता की कोठी के ठीक पीछे था। वहां जब तालियां बजती थीं, तो कोठी में बैठी मनोहर की मां को भी सुनाई देती थीं और वह खुश हो-होकर उसके स्वर्णिम भविष्य के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएं करती थीं।

धीरे-धीरे उसकी पूछ बढ़ने लगी। वह कस्बे के दूसरे स्कूलों में भी बुलाया जाने लगा। कविता और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में वह हमेशा आगे रहता। पुरस्कार स्वरूप उसे बहुत-सी किताबें भी मिलतीं, जिन्हें वह पढ़ता और सहेज कर रखता था। उसकी एक कविता शहर से निकलने वाली एक मासिक पत्रिका में भी छपी। फिर कुछ कविताएं और छपीं और लोगों को आश्चर्य होने लगा कि वह इतनी कम उम्र में इतनी अच्छी कविताएं कैसे लिख लेता है? घर में शादियों के अवसर पर या छुट्टियों में जब लोग एकत्र होते, तो उससे कविता सुनाने का आग्रह करते। मां-बाप से भी उसको पूरा प्रोत्साहन मिलता।

धीरे-धीरे मनोहर को लगने लगा कि वह एक 'बड़ा आदमी' है और घर के लोग, स्कूल के शिक्षक और सहपाठी, सभी उससे निचले स्तर के जीव हैं। उसके

मन में अहंकार जैसी कोई चीज पैदा हो गई। छोटे बच्चों को वह डांट-डपट देता और श्रेष्ठता की भावना के कारण बड़ों के प्रति भी उसके मन में निरादर का भाव पैदा होने लगा। पढ़ाई में भी उसका मन कम लगने लगा और परीक्षाओं में उसके अंक भी कम आने लगे। इससे पहले तो वह दुखी हुआ। पर उसने कहीं पढ़ रखा था कि दुनिया के महान लोग स्कूली पढ़ाई में अच्छे नहीं होते। इसलिए पढ़ाई में कमजोर हो जाना उसे अच्छा ही लगा। वह समझने लगा कि वह भी अब शीघ्र ही महान लोगों की गिनती में आ जाएगा।

वह अब स्कूल में सबसे ऐंठा-ऐंठा रहने लगा। बरामदों में भी अकड़ा-अकड़ा चलता था। सहपाठियों की बात तो और, अध्यापकों को भी वह कुछ नहीं समझता था। उसके इस बदलाव से अध्यापक भी दुखी थे। वे उसे 'स्टाफ-रूम' में बुलाकर स्नेह से समझाते-बुझाते थे। पर उसके ऊपर उनका कोई असर नहीं पड़ता और उसका घमंड बढ़ता ही चला गया।

एक दिन कक्षा में अंग्रेजी के अध्यापक हीरारामजी ने उससे कुछ सवाल पूछे। वह जान-बूझकर ढिठाई के साथ उनके ऊलजलूल उत्तर देने लगा। शिक्षक ने उससे बेंच पर खड़े हो जाने को कहा। वह नहीं माना और अपनी जगह बैठा रहा। इस पर वह उसके नजदीक आए और दृढ़ता के साथ उसे उठाकर बेंच पर खड़ा करते हुए उन्होंने कहा—"तुम बहुत ढीठ हो गए हो। पढ़ाई में भी कमजोर हो गए

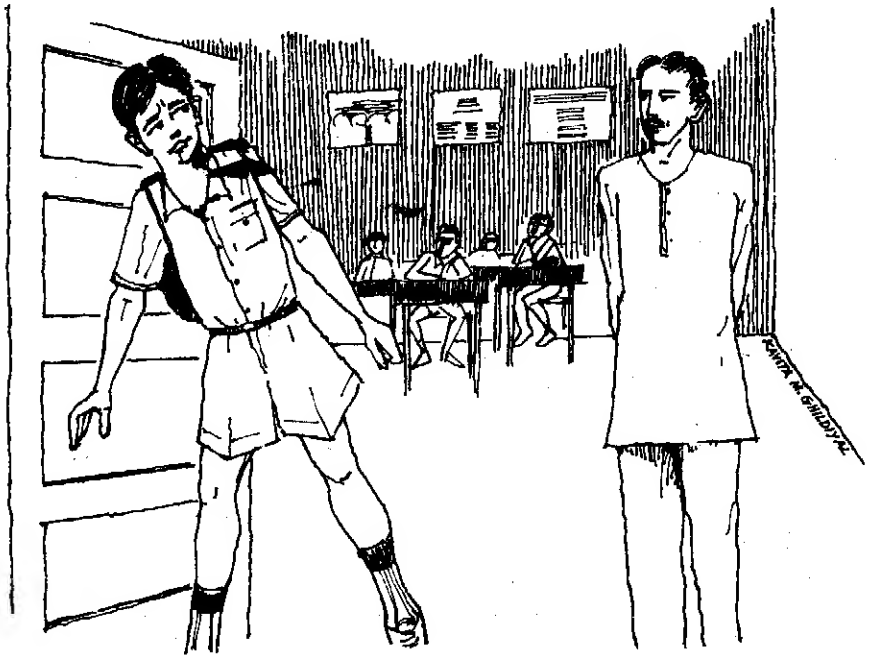

हो। शिक्षकों का भी आदर नहीं करते। यह सब ठीक नहीं है। थोड़ी देर बेंच पर खड़े रहकर सोचो कि क्या यह सब ठीक है?"

मनोहर को लगा कि यह उसका अपमान है। उसे यह भी लगा कि यह उसके खानदान का अपमान है और पिताजी की रईसी तथा बड़प्पन का अपमान है। उसके शिक्षक हीरारामजी नीची जाति के थे। इसलिए उसने सोचा—इस मामूली शिक्षक की यह मजाल, जो मुझे बेंच पर खड़ा करे? गुस्से में उसे कुछ न सूझा। उसने अपना आपा खो दिया और यह कहते हुए कमरे से बाहर निकल गया—"एक चमार की यह मजाल, जो मुझे दंडित करे?" घर जाकर वह अपनी मां की गोद में सर छिपाकर रोने लगा।

मनोहर के पिता स्कूल के मैनेजर थे। उन्होंने जब सुना कि मनोहर इस तरह से स्कूल से चला आया है, तो उन्हें बड़ा दुख हुआ। घर के सभी लोगों ने कहा कि हरिजन मास्टरजी को स्कूल से निकलवा देना चाहिए। पर मनोहर के पिता सबकी बात सुनते, सोचते और चुप रहते।

उधर मास्टर हीराराम भी बहुत परेशान थे। उनको लग रहा था कि उनकी नौकरी जाने वाली है। साथ ही उन्हें यह भी लग रहा था कि उन्होंने जो किया था, वह उचित ही था। शाम को वह हेडमास्टर साहब के घर पहुंचे और सारा हाल बता दिया। वह भी चिंतित हो गए। पर इस समस्या का कोई हल उन्हें भी तुरंत न सूझा। दूसरे अध्यापकों का ख्याल था कि मनोहर को स्कूल से निकाल देना चाहिए।

उधर मनोहर को भी रात में नींद नहीं आई। उसे बार-बार लग रहा था कि उससे कहीं कोई भूल हो गई है। उसके मन पर एक भारी पत्थर-सा पड़ गया था। मास्टर हीराराम को वह बहुत चाहता था। 'मैंने उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया, क्यों किया, क्यों किया?' वह अपने मन से बार-बार पूछता। दूसरे दिन, तीसरे दिन और चौथे दिन भी वह स्कूल नहीं गया। उसके पिता भी परेशान थे।

दो-चार दिन और बीते, तो सोच-विचार के बाद हेडमास्टर ने मास्टर हीराराम को साथ लेकर मैनेजर साहब के घर जाने और पूरा हाल सुना देने का फैसला किया।

मनोहर के पिता ने सारा हाल सुना और जेब से एक कागज निकाल कर हेडमास्टर साहब को देते हुए उन्होंने कहा—"आप इसे ले जाइए। कल सुबह मनोहर को लेकर मैं स्कूल आऊंगा। सुबह स्कूल के हाल में प्रार्थना के पहले सभी अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने मनोहर इसे पढ़ेगा। उसके बाद फैसला आप लोग करेंगे।"

हेडमास्टर साहब कागज लेकर चले गए। उसमें क्या लिखा था, यह न उन्हें मालूम था, न मास्टर हीराराम को, न किसी और को, क्योंकि वह एक लिफाफे में

सील किया हुआ था। दूसरे दिन भरे स्कूल के सामने लिफाफा खोला गया और मनोहर को उसे पढ़ना पड़ा। उसमें लिखा था—"मुझे इस बात का हार्दिक दुख है कि मैंने कक्षा में अपने सम्मानित अध्यापक के प्रति मुंह से अपशब्द निकाले। मैं अपने श्रद्धेय गुरु श्री हीरारामजी से पूरे स्कूल के समक्ष क्षमा मांगता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि भविष्य में मैं अपने गुरुओं के साथ पूरे सम्मान के साथ पेश आऊंगा।"

अब तक मास्टर हीरारामजी को भी पता न था कि कागज पर क्या लिखा गया है। इसलिए उन्होंने जब अपने प्रिय शिष्य के मुंह से ये बातें सुनीं, तो उनको बड़ा क्षोभ हुआ। इस कल्पना से भी उनको बड़ा दुख हुआ कि उनके कारण एक प्रतिभावान छात्र को सबके सामने अपमान का घूंट पीना पड़ा। उनकी आंखें छलछला आईं। वह आगे बढ़े और उन्होंने मनोहर को गले से लगा लिया। गुरु-शिष्य के इस भाव-भरे मिलन से दूसरे शिक्षक और विद्यार्थी गद्‌गद् थे। स्कूल का हाल तालियों से गूंज उठा।

आपके हिस्से का अनार

उसका नाम मुरारी था। कस्बे के ही एक स्कूल की सातवीं कक्षा का छात्र था।

उसके पिता राशन-दफ्तर में हेड क्लर्क थे। घर में मां, पिता, दो छोटे भाई-बहन और दादीजी, सब एक साथ रहते थे।

घर में खाना अच्छा बनता था। चावल-दाल, रोटी-सब्जी, सुबह नाश्ते के लिए परांठे और आलू-चने, त्योहारों पर या मेहमानों के आ जाने पर पूरी-हलुवा—सब कुछ बनता था। दफ्तर से लौटते समय उसके पिता कभी-कभी मिठाइयों के दोंने भी लाते थे। लेकिन घर में किसी के लिए कोई फल तभी आता था, जब वह बीमार हो जाता था।

वैसे कस्बे में ही एक बगीची थी, जिसे पुजारीजी की बगीची कहते थे। मुरारी कभी-कभी अपने दो-चार सहपाठियों के साथ बगीची में घुसकर बेर, जामुन, अमरूद, कटहल के कोये, खट्टे-मीठे फालसे आदि मौसमी फलों का मजा लेता था। बगीची में दो-चार पेड़ आम के भी थे। मौसम में वे जब फल देते थे, तो कुछ आम मुरारी के हिस्से में भी जरूर पड़ते थे।

मुरारी के पिता चूंकि राशन के दफ्तर में काम करते थे, इसलिए कस्बे में उनका दबदबा था और पुजारीजी अपनी बगीची को उजड़ता देखकर भी उससे या उसके दोस्तों से कुछ कह नहीं पाते थे।

एक दिन मुरारी जब स्कूल से अपने घर लौट रहा था, रास्ते में फलों की एक दुकान के सामने अचानक रुककर कुछ देखने लगा। एक टोकरी में कुछ अनार रखे हुए थे। बड़े-बड़े, लाल-लाल दानों वाले, कांधारी, रस से लबालब। दुकानदार ने एक अनार को तोड़कर लोगों को ललचाने के लिए टोकरी में सबसे ऊपर रख छोड़ा था। मुरारी की नजर उसी पर जाकर अटक गई थी। वह अपने मुंह का पानी रोक नहीं पा रहा था और किसी तरह उस अनार को हड़प कर खा जाना चाह रहा था।

फल वाले ने जब उसको इस तरह अनार पर नजर गड़ाए हुए देखा, तो उसको पास बुलाकर पूछा—"क्या चाहिए?" मुरारी पल-भर को कुछ बोल नहीं सका। उसको लगा कि अनार खाने का उसका सपना पूरा होने जा रहा है। इसलिए उसने डरते-डरते पूछा--"उस अनार के कितने पैसे लगेंगे?" दुकानदार ने फट से अनार को तौलकर कहा—"दो सौ ग्राम है, कुल साढ़े चार रुपये।"

साढ़े चार रुपये सुनकर मुरारी का सर चकरा गया। इतने पैसे एक अकेले अनार के लिए? लेकिन अनार खाने हैं, तो पैसों का इंतजाम तो करना ही पड़ेगा। उसने अपने आप से कहा—मेरे स्कूल में इतने रुपये तो महीने-भर की फीस के भी नहीं होते। एक खट्टा-सा फल और इतना मंहगा।

मुरारी जानता था कि उसकी जेब में बस एक ही रुपया है। फिर भी उसने अपनी जेब को टटोल कर देखा और यह पक्का हो जाने पर कि उसके पास सचमुच एक ही रुपया है, वह अचानक बुझ-सा गया। अपने आप से कुछ बुदबुदाते हुए बोला—जामुन, बेर और अमरूद भी कोई फल है? इन्हें तो जंगलों में बंदर भी खाते हैं। आम को भी हमारे 'मास्साब' बेकार में फलों का राजा कहते हैं। फलों का असली राजा तो अनार है। कितना सुंदर है यह फल, जिसका एक-एक दाना रत्नों जैसा है।

मुरारी कुछ देर वहीं रुका रहा और सोचता रहा। उसने पुजारीजी की बगीची के छोटे-छोटे देसी, कच्चे-पक्के अनार तो चखे थे। अनार के लाल-लाल फूलों से वह खेला भी था। पर इतना लुभावना, इतना बड़ा और रसीला अनार उसने, चखने को कौन कहे, कभी देखा भी न था। इसलिए उसने मन-ही-मन कहीं से साढ़े चार रुपये इकट्ठा कर कल-परसों तक एक अनार खरीदने का पक्का इरादा किया।

उसको अभी तक वहीं ठिठका हुआ और कुछ सोचता हुआ देखकर फल वाले ने पूछा—"क्या घर में कोई बीमार है? किसके लिए अनार लेना चाह रहे हो? पैसे अभी न हों, तो अनार ले जाओ। हम तुम्हारे पिताजी को जानते हैं। पैसे बाद में आ जाएंगे।"

मुरारी ने उसकी यह बात सुनी, तो उसने अपने आप से कहा—क्यों न इसका फायदा उठाऊं? पर पिताजी को जब यह बात मालूम होगी, तो मुझे जरूर इसकी सजा भी भुगतनी पड़ेगी।

यह सोचकर वह घर की ओर जाने के लिए आगे बढ़ गया। घर पहुंचने पर उसने रोज की तरह नाश्ता किया, पर आज उसे वह अच्छा नहीं लगा। मां को भी लगा कि वह आज कुछ अनमना है और कुछ कहना या मांगना चाह रहा है। उसने पूछा—"क्या बात है मुरारी? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है, न?"

मुरारी ने मां के ये स्नेह-भरे शब्द सुने, तो उसका हौसला बढ़ गया। हिम्मत करके बोला—"मां, मुझे लगता है कि मैं बीमार हूं।" इतना कहने के बाद वह चुप हो गया। उसने सोचा कि मां अब भी अनार खा लेने की बात कह देगी। मगर मां वहां से उठी और उसने आलमारी से थर्मामीटर निकाल कर उसका बुखार देखा। वह बिल्कुल ठीक निकला। मुरारी की कुछ आगे कहने की हिम्मत नहीं हुई।

रात में वह अपनी दादी मां के पास सोता था। वह उसे रोज कोई-न-कोई कहानी सुनाती थीं, और उसे नींद आ जाती थी। पर आज उसका मन न कहानी में लगा, न उसे नींद ही आई। दादी मां ताड़ गईं कि आज कुछ गड़बड़ है। उन्होंने पूछा— "क्या बात है, बेटा?" पर मुरारी कुछ न बोला। इस समय उसका ध्यान दादी मां के बटुए की तरफ था। वह सोचने लगा—दादी मां जब सो जाएंगी, तो मैं उनके बटुए से साढ़े चार रुपये निकाल लूंगा। लेकिन पकड़े जाने और फिर दंडित होने के भय से वह इस बारे में कुछ आगे नहीं सोच सका और पता नहीं कब उसको नींद आ गई।

सपने में उसने देखा कि वह अनारों की किसी बगिया का मालिक है और उसके चारों ओर अनार-ही-अनार हैं। लेकिन ज्यों ही उसने उन्हें खाने के लिए हाथ बढ़ाया, त्यों ही उसकी नींद टूट गई और वह बेचैन हो गया।

दूसरे दिन सुबह वह रोज की तरह उठा और स्कूल जाने की तैयारी करने लगा। तभी उसकी मां ने उसे पुकारा—"मुरारी, यहां आकर नाश्ता कर ले।" लेकिन वह सोच रहा था कि वह नाश्ता भी कोई नाश्ता है, जिसमें अनार न हो। आधे मन से वह नाश्ता करने लगा। नाश्ते में खीर बनी थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। लेकिन आज उसे खीर भी बेस्वाद लग रही थी। खाते-खाते वह अचानक बोल उठा—"मां, आज शाम को अनार की खीर बनाना।" इतना कहकर वह सोचने लगा कि मां अनार की खीर बनाने को राजी हो जाएंगी, तो अनार खरीदा जाएगा, और उसे खाने की उसकी इच्छा पूरी हो जाएगी। लेकिन मां ने सिर्फ इतना कहा—"पागल हो गया है, तू। कहीं अनार की भी खीर बनती है?"

फल वाले की दुकान स्कूल के रास्ते में पड़ती थी। पहले तो उसने सोचा कि आज किसी और रास्ते से स्कूल जाए, पर अनार को एक बार और देखने की अपनी

इच्छा को वह दबा न सका। इसलिए वह उस दिन भी उसी रास्ते से गया। दुकान के सामने थोड़ा ठिठका और फिर आगे बढ़ गया।

स्कूल में उसका मन नहीं लग रहा था। उसका सारा ध्यान एक अनार में आकर सिमट गया था। रोज की तरह आज जब स्कूल की छुट्टी हुई, तो पता नहीं कैसे उसके पांव पिता के दफ्तर की तरफ मुड़ गए। वह भागा-भागा सीधे उनके कमरे में घुस गया और जोर-जोर से रोने लगा। सब चकित थे कि पता नहीं क्या हुआ हो। स्वयं मुरारी को भी अपने दुस्साहस पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसके पिता भी घबरा गए। उन्होंने पूछा—"क्या बात है, बेटा?" उसने रोते-रोते जवाब दिया—"पिताजी, आप चाहे मुझे मारिए, पर में अभी, इसी समय, एक अनार खाऊंगा। साढ़े चार रुपये दीजिए।"

मुरारी के पिता यह सुनकर अचम्भे में आ गए। सोचने लगे, क्या हुआ है आज मुरारी को। इस तरह का व्यवहार तो उसने पहले कभी नहीं किया था। फिर न जाने क्या सोचकर उन्होंने अपनी जेब से पांच रुपये का एक नोट निकाल कर मुरारी के हाथ पर रख दिया। पैसे लेकर वह खुशी-खुशी लौट गया।

शाम को मुरारी के पिता जब घर पहुचें, तो वह दरवाजे पर खड़ा हा- हा- हा- हा- हंस रहा था। उनके नजदीक आते ही वह बोला—"पिताजी, ये रहे बाकी के पचास पैसे और आपके हिस्से का अनार।"

छुट्टियों में फिर आना

गर्मियों की छुट्टियां शुरू होने वाली थीं और मनोहर घर के बरामदे में बैठा कुछ सोच रहा था। तभी उसका मित्र अनूप आ गया। उसको मनोहर का यों गुमसुम बैठना अच्छा न लगा। इसलिए उसका ध्यान बंटाने के विचार से उसने पूछा-- "क्या सोच रहे हो, मनोहर?"

मनोहर ने पहले तो सोचा कि इस मामूली सवाल का जवाब क्या देना, लेकिन दो पल रुकने के बाद बोला—"कुछ नहीं, बस यों ही।"

लेकिन अनूप को अपने सवाल का जवाब चाहिए ही था। इसलिए उसने वही सवाल फिर पूछा, तो मनोहर ने बस यों ही कह दिया—"कोई खास नहीं, बस यही सोच रहा था कि छुट्टियों में कहां जाऊं?"

जवाब सुनकर अनूप उछल पड़ा। सचमुच यही सवाल उसके मन में भी था। उसके पास एक पूरा प्रस्ताव था। उसके पिता ने कहा था कि वह अगर अपने दो-चार दोस्तों को और मना ले, तो वह उनके नैनीताल जाने का इंतजाम करवा सकते हैं।

वह बोला—"यही सवाल तो मैं लेकर आया था। छुट्टियों में ननिहाल जाते-जाते तंग आ गया हूं। इस बार नैनीताल चलते हैं। मदन और कुबेर भी जाने को तैयार हो जाएं तो क्या कहने? तुम अपने पिताजी से पूछो। मेरे पिताजी ने सब इंतजाम कर दिया है। अच्छा, अब चलता हूं। मदन और कुबेर से भी पूछना है।"

इतना कहकर अनूप चला गया। इधर मनोहर की बेचैनी बढ़ गई। क्या पिताजी जाने को कहेंगे? कहीं छोटी बहन ममता भी चलने की जिद न करने लगे। तब तो उसका जाना भी रुकेगा। पिताजी ने हां कह दिया, तो क्या अम्माजी मानेंगी? इसी उधेड़बुन में मनोहर का मन निराशा और उत्साह के बीच झूलता और पींगें लगाता रहा।

दूसरे दिन सुबह एक चमत्कार-सा हुआ। रविवार का दिन था और मनोहर अपनी प्रिय पत्रिका लेकर बरामदे में बैठा ही था कि अनूप के पिता अनूप के साथ मनोहर के पिता से मिलने आ गए। आते ही बोले—"देखिए राममोहनजी, इसमें कोई हर्ज नहीं है। इन्हें अपने आप भी एक समूह में कभी-कभी बाहर जाने देना चाहिए। इससे इनका आत्म-विश्वास बढ़ेगा। ये नई बातें सीखेंगे, नई जगहों को अपनी नजरों से देखेंगे।"

मनोहर के पिता राममोहन बाबू पहले तो हिचकिचाए, लेकिन जब उन्हें अनूप के पिता ने लड़को के नैनीताल जाने, वहां ठहरने, घूमने और खाने-पीने का पूरा ब्यौरा समझाया, तो वह आश्वस्त हो गए और मनोहर को वहां जाने और छुट्टियां मनाने की अनुमति मिल गई। इसी तरह मदन और कुबेर के माता-पिता को भी मना लिया गया।

अब मनोहर, अनूप, मदन और कुबेर जीवन में पहली बार अकेले यात्रा करने की कल्पना करते हुए सपनों में खो गए। वे पार्क में रोज शाम को मिलते, योजनाएं बनाते। नैनीताल कैसी जगह होगी, इसकी कल्पना करते और फूले नहीं समाते। वे यह भी सोचते कि जब वे यात्रा से लौटेंगे, तो किन-किन मित्रों से मिलकर क्या बताएंगे, और किसके-किसके लिए क्या-क्या लाएंगे?

मनोहर, अनूप, मदन और कुबेर इलाहाबाद में रहते थे और वहां के सेंट जोज़्फ स्कूल में पढ़ते थे। अनूप के पिता हाइकोर्ट में वकील थे और उनका दबदबा था। मनोहर के पिता विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे। मदन और कुबेर के घर व्यापार होता था। कुल मिलाकर इन लड़कों की 'चौकड़ी' पूरे स्कूल में मशहूर थी, क्योंकि कोई पढ़ने में तेज था, कोई खेलने में। मदन को लोग स्कूल की 'कल्चरल सोसायटी' की जान कहते थे और कुबेर नाटकों में भाग लेता था। अपने-अपने ढंग से ये सभी नैनीताल जाने की तैयारी करने लगे।

रवाना होने के दो-चार दिन पहले से ही मनोहर के घर में एक हड़कंप-सा मचा हुआ था। उसके लिए एक नई अटेची लाई गई। एक-एक चीज की लिस्ट बनाकर अटेची में रखा गया।

राममोहन बाबू एक डायरी भी ले आए और मनोहर को देते हुए बोले—"इसे अपने साथ रखना और इसमें अपने अनुभव लिखते रहना।"

पिता का यह उपहार उसे बहुत अच्छा लगा। उसने मन-ही-मन एक कहानी की कल्पना की और उसे 'छुट्टियों में नैनीताल' का शीर्षक दे डाला।

उधर मनोहर की मां भी कुछ परेशान-सी थी। यह देखकर मनोहर ने उससे पूछा— "क्या बात है, मां? तुम घबरा-सी क्यों रही हो?"

मनोहर शहर के बाहर पहली बार मां-बाप के साथ के बिना निकल रहा था, इसलिए मां का मन शंकाओं से भरा हुआ था। पर वह अपना असली भाव दबाते हुए बोली—"देखो, ऊंचाई पर बहुत ठंड पड़ती है। ऊनी कपड़े पहने रहना। और हां, बस चलने लगे तो सामने देखना। सड़क के दाईं ओर गहरी घाटियां हैं। उधर देखोगे तो मिचली आएगी।" यह कहते हुए मनोहर की मां ने ऊनी मोजे और स्वटरों से भरी उसकी अटेची को खटाक से बंद कर दिया।

इलाहाबाद स्टेशन से गाड़ी रवाना हुई। सबने अपनी-अपनी शुभकामनाओं के साथ 'चौकड़ी' को विदा किया। गाड़ी के स्टेशन से कुछ दूर जाते ही चारों मित्रों

को लगा जैसे वे किसी दूसरी दुनिया में जा रहे हैं। उन्हें यह भी लगा जैसे वे बहुत बड़े हो गए हैं। उनका मन बल्लियों उछल रहा था। तुरंत उन्हें भूख भी लग आई और वे अपने-अपने डिब्बे खोलकर मिल-बांटकर खाने लगे।

उनकी ट्रेन बरेली तक जाती थी। यहां से उन्हें दूसरी गाड़ी लेकर काठगोदाम जाना था। सुबह का समय था। घर में सभी को दूध पीने की आदत थी। पर स्टेशन पर सिर्फ चाय मिल रही थी। मनोहर को एक तरकीब सूझी।

उसने कहा—"अनूप, तुम यहीं बैठकर सामान की रखवाली करो। हम तीनों स्टेशन से बाहार जाकर दूध ले आते हैं। हमारी गाड़ी अभी दो घंटे बाद आएगी। घर से जो खाना लाए थे, वह रास्ते मे ही खत्म हो गया। लेकिन कोई बात नहीं। यहां टोस्ट मिल रहा है। गरम पूड़ियां भी मिल रही हैं। दूध के साथ वह खा लेंगे।"

सबने स्टेशन के मुसाफिरखाने में नहाने के बाद खाना खाया। काठगोदाम की गाड़ी आई और वे उसमें बैठ गए। कुछ घंटों की यात्रा के बाद उन्हें लगा जैसे वे किसी दूसरे लोक में जा रहे हों। सामने ऊंची-ऊंची पहाड़ियां और पहाड़ियों पर ऊंचे-ऊंचे हरे पेड़। दूर से लग रहा था जैसे सामने हरियाली का ऊंची लहरों वाला सागर लहरा रहा हो।

गाड़ी झुकछाक-झुकछाक, खटर-पटर-खटर-पटर करती काठगोदाम पर रुक गई। वे स्टेशन के बाहर आए, तो ठगे से रह गए। प्रकृति भी इतनी सुंदर हो सकती है, इसकी उन्होने कल्पना भी न की थी।

"नैनीताल, नैनीताल, नैनीताल", यह आवाज थी, बस-चालकों की। वे एक आरामदेह बस में बैठ गए। बस ऊपर की ओर जाने लगी, जैसे वह आसमान में जा रही हो। मनोहर घबराने लगा। उसे अपनी मां की वह बात याद आ गई कि सड़क के दाईं ओर घाटियों में मत झांकना। पहले तो उसने आखें मींच लीं, पर जब हिम्मत करके आखें खोलीं, तो न उसका सिर घूमा, न मिचली आई। घाटियों में दूर-दूर तक फेले हरे-भरे पेड़ों के घने जंगल, पशु और गांव उन्हें किसी किस्से जैसे लग रहे थे।

दो घंटे बाद बस रुकी, तो वे नैनीताल के बस अड्डे पर थे। एक तरफ तल्लीताल और दूसरी तरफ मल्लीताल की सड़कें। बीच में नैनादेवी का ताल, जिसकी वजह से इस जगह का नाम नैनीताल पड़ा। ताल में याट-क्लब की नौकाएं। अनूप को किसी कवि की यह पंक्तियां याद आ गईं—"पाल उड़ाती हुई पंख फैलाकर नावें। कब किधर हंसिनी-सी उड़ जावें।" वह इन्हें गुनगुनाने क्या, प्रकृति की सुंदरता से प्रभावित होकर जोर-जोर से गाने लगा।

कुछ देर तक मनोहर, अनूप, मदन और कुबेर अपने-अपने सामान को जमीन पर रखे हक्के-बक्के खड़े रहे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कहां जाएं, क्या करें। तभी एक आदमी आकर उनके पास रुका और बोला—"आप लोग इलाहाबाद से आए हैं, न।"

उनके 'हां' कहने पर, वह फिर बोला—"हमारे पास **वकील** साहब ने खबर भेज दी थी। चलिए, आप लोगों के ठहरने का इंतजाम ऊपर **शेरवुड** स्कूल के पास एक काटेज में किया गया है। वे टट्टुओं पर बैठकर पहाड़ी के ऊपर बंगले तक पहुंचे।

दो-तीन घंटे आराम करने के बाद ही वे बाहर निकलना चाहते थे। लेकिन जल्दी-से-जल्दी बाहर जाने और नई जगह को अपनी आंखों से देखने की उत्सुकता के कारण वे कमरे में ज्यादा देर तक रुक नहीं पाए, और 'टी-शर्ट' पहन कर बाहर आ गए। बरामदे के बाहर आते ही उन्हें कंपकंपी-सी लगी, जैसे जाड़े का मौसम हो। बंगले के बूढ़े चौकीदार ने टोका—"साहब, ऐसे न जाइए बाहर। पता नहीं कब बारिश होने लगे, या तेज ठंडी हवा चलने लगे। जर्सी पहन लीजिए।"

अनूप ने आसमान की ओर देखा और बोला—"कहां हैं, बादल! धूप भी तो इतनी तेज है। थोड़ी देर घूम-घामकर वापस आ जाएंगे, शाम के पहले।"

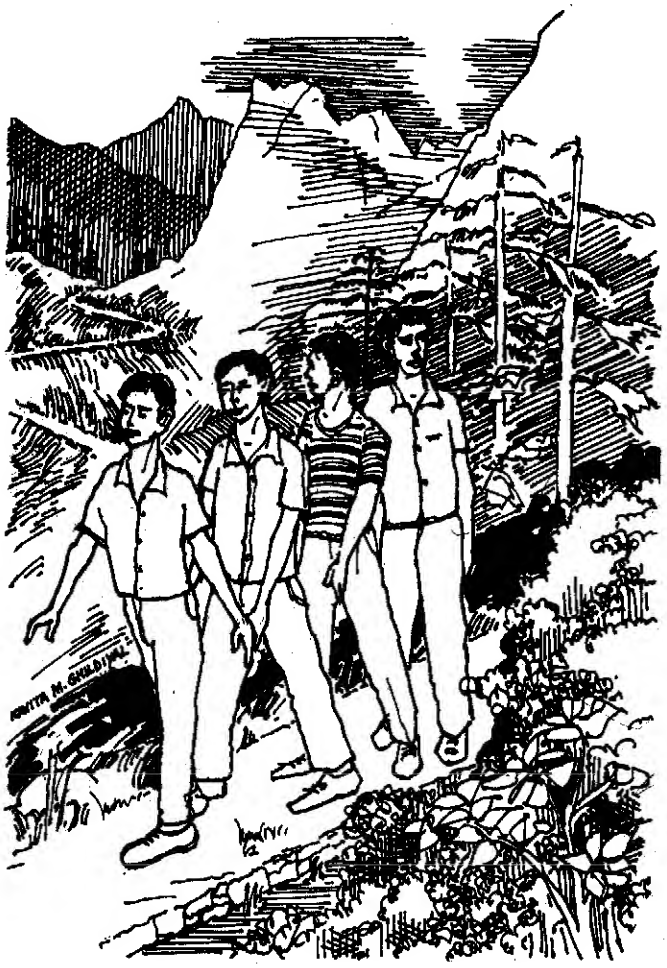

और वे नीचे उतरने लगे। रास्ते में उन्हें लगा कि वापस जाकर ऊनी कपड़े पहन लेने चाहिएं। लेकिन सड़क, पहाड़ियां, पेड़ और ताल दूर से इतने सुंदर लग रहे थे कि वे जल्दी-से-जल्दी उन्हें आंखों में भर लेना चाहते थे। कुछ दूर और चले, फिर हवा का एक ठंडा झोंका। मनोहर को लगा जैसे वह बर्फ हो जाएगा। उसे घर की रजाई याद आने लगी। अनूप, मदन और कुबेर भी कांपने से लगे। मदन बोला—"हमें जरा समझदारी से काम लेना चाहिए। बीमार हो जाएंगे, तो छुट्टियां मनाने का सारा मजा किरकिरा हो जाएगा।"

"तो फिर क्या करें?" मनोहर ने पूछा।

"तुरंत वापस लौट चलें और स्वटर, कोट और मफलर पहन कर आएं"—अनूप का सुझाव था।

सबने ऊपर झांका। बाप रे! इतने ऊपर फिर जाना और नीचे उतरना कितना मुश्किल है। अनूप वहीं बैठकर घुटनों से पेट को ढंक कर थोड़ी राहत महसूस करने लगा।

"चलो मित्र, हिम्मत करके चलते हैं, ऊपर!" मदन बोला। और वे थके-मांदे बंगले पर पहुंचे। नाक से पानी आने लगा। ठंड से पलकें दुखने लगीं। बंगले का बूढ़ा चौकीदार अपने लम्बे कोट के उठे हुए कालर को नीचे करता हुआ बोला—"मैंने कहा था न कि जर्सी पहन कर बाहर जाइए।"

दूसरे दिन सुबह 'गाइड' उन्हें लेकर ऊपर 'चाइना-पीक' गया। वहां वह उन्हें छोड़कर कुछ विदेशी पर्यटकों के साथ हो लिया। उन्हें एक पल को लगा जैसे वे अकेले हों।

"अब नीचे किस रास्ते से जाएंगे?" कुबेर ने पूछा। वह कुछ डर-सा गया था। थोड़ी देर तक सभी चुप रहे, हक्के-बक्के। फिर मनोहर ने कहा—"उधर देखो, लोग उधर से नीचे उतर रहे हैं। हम भी उन्हीं के साथ हो लेते हैं।" और वे वापस आने लगे।

रास्ते में थोड़ी देर सुस्ताने के ख्याल से वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए। वहीं एक चाय की दुकान थी। रोटी-सब्जी भी मिल रही थी। उन्हें लगा कि वे पहली बार अपनी मर्जी से खुद अपनी जेब से पैसा निकाल कर खुद खरीद कर कुछ खाएंगे और जितनी इच्छा होगी खाएंगे। वहां उन्हें टोकने और हिदायत देने के लिए उनके मां-बाप नहीं थे, और उन्हें लग रहा था जैसे वे बहुत बड़े हो गए हों।

लेकिन तभी एक घटना हो गई। मदन और कुबेर वहीं लेटकर थकान मिटाने को अंगड़ाई लेने लगे। अचानक दोनों को लगा जैसे उनके हाथ झनझना रहे हों। पल-भर में ही वे चीखने और कराहने लगे, जैसे किसी बिच्छू ने डंक मार दिया हो।

"क्या हुआ, क्या हुआ"—कहते हुए वहां कुछ लोग जुट आए। तभी एक पहाड़ी लड़का दौड़ता हुआ उनके समीप आ गया। भीड़ को चीरता हुआ वह